



E-ISSN: 2706-8927
P-ISSN: 2706-8919
www.allstudyjournal.com
IJAAS 2022; 4(2): 86-90
Received: 16-02-2022
Accepted: 20-03-2022

भजन लाल
शोधार्थी, जवाहरलाल नेहरू
विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, भारत

वैदिक ग्रन्थों में भाषा विषयक चिन्तन

भजन लाल

प्रस्तावना

भारतीय ज्ञान परम्परा में भाषा-विश्लेषण का विशेष महत्त्व है। वेदों के व्याख्यान के लिए प्रवृत्त छः वेदाङ्गों में से चार वेदाङ्गों - शिक्षा, निरूक्त, व्याकरण तथा छन्दम् का साक्षात् भाषा विश्लेषण से सम्बद्ध होना इसका प्रबल प्रमाण है। इन चारों अङ्गों के साथ प्रातिशाख्य परम्परा भी भाषा का विश्लेषण करती है जिसका शिक्षा एवं व्याकरण में अन्तर्भाव स्वीकार कर पृथक् वेदाङ्ग के रूप में परिगणन नहीं किया गया है। इन वेदाङ्ग में ही नहीं भारतीय ज्ञानपरम्परा की किसी भी शाखा या प्रशाखा में वाक् के किसी न किसी पक्ष पर अवश्य ही विचार किया गया है। शास्त्रों का प्रवर्तन ही वाक् पर आश्रित है। भरतमुनि ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है सम्पूर्ण शास्त्र वाङ्मय हैं तथा वाणी पर ही आधारित हैं वस्तुतः वाणी से परे कुछ भी नहीं है-

वाङ्मयानही शास्त्राणि वाङ्निष्ठानि तथैव च।
तस्माद्वाचः परं नास्ति वाग्धि सर्वस्य कारणम्।¹

वेदों में भाषा-विज्ञान

ऋग्वेद में ही वाणी के सर्वव्यापक महत्त्व को स्वीकार कर लिया गया था। इस दृष्टि से ऋग्वेद के 1. 164, 10.71 तथा 10.125 पूरे के पूरे सूक्त अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। दशम मण्डल का 125वाँ सूक्त, अनुक्रमणी के अनुसार जिसके द्रष्टा ऋषि एवं देवता वागाभूषणी हैं, वाग्देवी की व्यापकता तथा विश्व-स्त्रष्टत्व का स्पष्ट उद्घोष करता है।

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः।
अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नि अहमश्विनोभा।²

इस सूक्त के अनुसार वाक् रुद्रों, वसुओं, आदित्यों एवं विश्वदेवों के साथ-साथ संचरणशील है। वाक् ही मित्रावरुणौ, इन्द्र, अग्नि, अश्विनौ, सोम, त्वष्टा, पूषा एवं भग इन समस्त देवताओं को धारण करती है तथा भरण-पोषण करती है।

आश्चर्यजनक रूप से वाक् स्वतः अपने बारे में कथन करती है कि-

“अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां”³

Corresponding Author:
भजन लाल
शोधार्थी, जवाहरलाल नेहरू
विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, भारत

अर्थात् वह वाक् राष्ट्री अर्थात् विश्व की शासिका है अथवा शासक के रूप में विश्व में देदीप्यमान है। वह वसुओं अर्थात् धनों को दिलाने वाली है। सम्पूर्ण ज्ञान से समन्वित है यज्ञों में स्तुत देवों में प्रथम है।

वाक् सूक्त के छोटे मन्त्र में वाग्देवी कहती है कि-

अहं रुद्राय धनुरातनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ।

अहं जनाय समद कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आ विवेश।⁴

अर्थात् ब्रह्म (वाक्त्व) से द्वेष करने वालों को मारने के लिए वाग्देवी रुद्र के लिए धनुष को खींचती है यह स्पष्ट किया गया है। एक ओर जहाँ वह ब्रह्म-द्वेष को मारने में सहयोग के लिए उद्यत है वहीं वह अच्छे लोगों को आनन्दित करने में भी तत्पर है।

वस्तुतः यहाँ वाक् ही परमात्म चैतन्य के रूप में आम्नात है तथा वही सृष्टि के मूलकारण के रूप में विवृत है। इस सूक्त से वाणी ही स्वतः अपने विश्वरूप का दर्शन करा रही है। जैसे गीता में श्रीकृष्ण ने अपने विश्वरूप का दर्शन कराया है।

वाक् के स्वरूप के विश्लेषण की दृष्टि से ऋग्वेद के प्रथममण्डल के 164वें सूक्त के कुछ मन्त्र भी अतीव महत्त्वपूर्ण हैं इस अस्यवामीय सूक्त के द्रष्टा ऋषि दीर्घतमस् हैं। यहाँ अक्षर को ऋग्वर्ग सूक्त या अनुवाक इत्यादि का मूल माना गया है।

गायत्रेण प्रति मिमीते अर्कमर्केण साम त्रैष्टुभेन वाकम्।

वाकेन वाकं द्विपदा चतुष्पदाक्षरेण मिमते सप्त वाणीः।⁵

वैदिक ऋषि द्वारा वाक् की सर्वव्यापकता का प्रतिपादन करते हुए कहा गया है कि सम्पूर्ण प्राणी इसी के कारण जीवन धारण करते हैं-

तस्याः समुद्रा अधि वि क्षरन्ति तेन जीवन्ति प्रतिशश्वतस्त्रः ततः क्षरत्यक्षरं तद्विश्वमुप जीवति।⁶

वृष्टि सम्बन्धी उदक को धारण करने वाले मेघ इसी शब्दब्रह्मात्मिका वाक् से जल प्राप्त कर प्रभूत वर्षा करते हैं। इसी उदक से सभी-दिशाओं में विद्यमान प्राणी जीवन धारण करते हैं। यही उदक सस्य इत्यादि का कारण है उत्पादक है तथा इस अन्नादि से सम्पूर्ण विश्व अर्थात् विश्व के सम्पूर्ण प्राणी जीवन प्राप्त करते हैं। वैदिक ऋषि ने शब्दात्मिका तथा अर्थात्मिका दोनों प्रकार की सृष्टियों का अविर्भाव शब्दात्मिका वाक् से ही स्वीकार किया है। यही श्रुति वैयाकरणों तथा आगमों के वाक्त्व के सम्पूर्ण विवेचन का मूल आधार है। यहीं से दृष्टि प्राप्त कर भर्तृहरि आदि आचार्यों ने शब्दब्रह्म से सम्पूर्ण जगत का विवर्त स्वीकार किया है-

अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम्।

विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः।⁷

इनके अनुसार शब्दब्रह्म अनादि तथा अनन्त है तथा वह शब्दार्थोभय प्रकार की सभी सृष्टियों का मूल है।

उपर्युक्त कारिका में प्रयुक्त 'अक्षर' पद का अर्थ भर्तृहरि ने अपनी स्वोपज्ञ वृत्ति में 'अक्षरनिमित्तत्वादक्षरम्' अर्थ किया है यही शब्दब्रह्म है जिससे जगत का आविर्भाव होता है। वाक् ही विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त होती है वाक् चतुर्धा विभक्त है इस तथ्य का प्रकाशन ऋग्वेद 1.164.45 में मिलता है-

चत्वारि वाक् परिमिता पदानि तानि विदुर्बाह्यणा ये मनीषिणः।

गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति।⁸

लोक में प्रचलित वाक् चार प्रकार की हैं इस सम्पूर्ण वाक् के पद चार प्रकार के हैं जिन्हें मेधावी मनीषी ब्राह्मण जानते हैं। इन चार प्रकार के पदों में से तीन प्रकार के पद गुहा में स्थापित होने के कारण प्रकाशित नहीं होते किन्तु वाणी के चतुर्थ भाग का प्रयोग मनुष्य करते हैं। वाणी के चार परिमित पद कौन-कौन से हैं? इस विषय में वेद के व्याख्याकारों के भिन्न-भिन्न मार्ग हैं। कुछ वेदवित् आचार्यों के मत में 'भूः' 'भुवः' 'स्वः' इन तीन व्याहृतियों का सार अकाराघात्मक प्रणव है। इसी मन्त्र की व्याख्या में पतंजलि तथा कैयट आदि वैयाकरण 'वाचः पदानि चत्वारि परिमितानि' का अर्थ स्वीकार करते हैं कि नाम, आख्यात, उपसर्ग एवं निपात इन चारों में सम्पूर्ण वाक् प्रविभक्त है।

वाक् के सम्बन्ध में भर्तृहरि का मत- भर्तृहरि ने वाक्यपदीय के प्रथम काण्ड में कहा है कि-

वैखर्या मध्यमायाश्च पश्यन्त्याश्चैतदद्भुतम्।

अनेकतीर्थभेदायास्त्रय्या वाचः परं पदम्।⁹

यद्यपि इस कारिका में वैखरी, मध्यमा एवं पश्यन्ती इन तीन ही वाणियों का उल्लेख किया गया है इससे कई विद्वान यह निष्कर्ष निकालते हैं कि भर्तृहरि को परा अभिप्रेत नहीं थी। शिवदृष्टि में इसी आधार पर भर्तृहरि के मत पर आक्षेप किया गया है किन्तु भर्तृहरि को परा भी अभिप्रेत थी इस सिद्धांत के साधक कई तर्क हैं। इसी कारिका में त्रयी शब्द का 'त्रयो अवयवाः वैखरीमध्यमापश्यन्तीरूपा अस्याः सा तस्याः परायाः' अर्थ करने पर परादि चारों वाणियों का अर्थ उपस्थित हो जाता है। इसीलिए भर्तृहरि ने वाक् के चातुर्विध्य के प्रतिपादक उपर्युक्त समस्त उद्धरणों तथा 'चत्वारि वाक्' इस मन्त्र को उद्धृत किया है। कारिका में प्रयुक्त 'एतद्दुतं परं पदं' का अर्थ अनादिनिधनं शब्दतत्त्वं यदक्षरं यतः अर्थभावेन जगतः प्रक्रिया विवर्तते' मानने पर भी परा रूप वाक् का स्पष्ट प्रतिपादन हो जाता है। 'एतद्दुतं परं पदं' का अर्थ व्याकरणम् मानने पर पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी रूप भेद हैं जिनके ऐसी त्रयी अर्थात् तीन अवयवों वाली परा अर्थात् शब्दब्रह्म के अधिगम का व्याकरण ही एकमात्र साधन है, यह अर्थ किया जाता है।

वैयाकरणों ने ऋग्वेद के एक अन्य मन्त्र की भी व्याख्या शब्दब्रह्मवाद की स्थापना की दृष्टि से की है-

चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्या आविवेशे॥¹⁰

यद्यपि ऋग्वेद के चतुर्थ मण्डल के 58वें सूक्त से अग्नि, सूर्य अप, घृत एवं गो इन पाँच देवताओं की स्तुति की गई है तथापि पतंजलि आदि शाब्दिक इस मन्त्र की व्याख्या शब्दब्रह्म को इसका देवता मानकर करते हैं।

‘चत्वारि शृङ्गाणि - पदजातानि, नामाख्यातोपसर्गनिपाताश्च॥’
त्रयो अस्य पादाः - त्रयः कालाः = भूतभविष्यद्वर्तमानाः॥

द्वे शीर्षे - द्वौ शब्दात्मनौ नित्यः कार्यश्च॥ सप्त हस्तासो अस्य-
सप्त विभक्तयः॥ त्रिधा बद्धः - त्रिषु स्थानेषु बद्धः - उरसि,
कण्ठे, शिरसीति॥ वृषभो वर्षणास्॥ महो देवो मर्त्या आविवेशेति॥
महान्देवः = शब्दः मर्त्याः मरणधर्माणो मनुष्याः, नानाविवेशे। महता
देवेन नः साम्यं यथा स्यादित्यध्येयं व्याकरणम्॥¹¹

इस व्याख्यान में भी चत्वारि शृङ्गाणि का अर्थ, चत्वारि पदजातानि अर्थात् परा, पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी तथा नाम, आख्यात, उपसर्ग एवं निपात इन दोनों चतुष्कों का ग्रहण करने पर ही पूर्ण होता है। त्रयः पादाः का अभिप्राय है भूत, भविष्यत् एवं वर्तमान रूप तीन काल। द्वे का अर्थ है कि इस शब्दात्त्व के नित्य एवं कार्य दो शब्दस्वरूप हैं। इसके सात विभक्तियों के रूप में सात हाथ हैं। यह तीन स्थानों उरस्, कण्ठ तथा शिरस् से बँधा है क्योंकि इन्हीं स्थानों से इसका उच्चारण होता है।

‘चत्वारि वाक् परिमिता पदानि’ तथा ‘चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा’ इन दोनों ही मन्त्रों में चत्वारि का अर्थ चारों वाणी-परा, पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी अर्थ ही ऋषियों को अभिप्रेत लगता है क्योंकि इन चारों में से तीन परा, पश्यन्ती एवं मध्यमा ये तीनों निश्चित रूप से गुहा में स्थित होती है। इनका ज्ञान सामान्य मनुष्यों को नहीं होता है। सामान्य मनुष्य केवल वैखरी से ही अपने व्यवहार का निष्पादन करता है। परा, पश्यन्ती एवं मध्यमा के स्वरूप का विमर्श दर्शन का विषय है। इनका ज्ञान मनीषियों को ही हो सकता है, इस तथ्य को ऋषि स्वतः स्पष्ट कर रहे हैं। अथर्ववेद से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है।

तिस्त्रो वाचो निहिता अन्तरस्मिनः तासामेका विपपातानुघोषम्॥¹²

सभी प्राणियों के अन्तःकरण में इसका निवास है, ऋषि सबके लिए इसकी प्राप्ति की प्रार्थना करता है-

देवीं वाचमजनयन्त देवास्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति।
सा नो महेन्द्रधर्मूर्ज दुहाना धोनुर्वागस्मानुप सुष्टुतैतु॥¹³

देवता इस मार्यामक वाक् को उत्पन्न करते हैं। देवप्रसूत इस वाक् को व्यक्तवाणी वाले अथवा अव्यक्तवाणी वाले सभी प्रकार के लोग बोलते हैं। क्योंकि यह सभी के हृदय में पहले से ही विद्यमान रहती है हम इसकी स्तुति करते हैं जिससे अन्न तथा पयोघृतादि रूप रस का दोहन करती हुई हर्षित करने वाली यह वाक् सर्वदा हमारे पास आती रहे या बनी रहे।

ऋग्वेद के कई अन्य सूक्त भी वाक् के किसी न किसी पक्ष को स्पष्ट करते हैं। स्पष्ट सुनना जितना महत्त्वपूर्ण है उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है उस बोली अथवा सुनी हुई भाषा के अर्थ का ज्ञान। यास्क ने निरुक्त में स्पष्ट रूप से कहा है कि अर्थज्ञानपूर्वक वेदों को पढ़ने से ही सकल अभीष्टों की सिद्धि होती है।

स्थाणुरयं भारहारः किलाभूदधीत्य वेदान्न विजानाति योऽर्थम्।
योऽर्थज्ञ इत् सकलं भद्रमश्नुते नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा॥¹⁴

महाभाष्यकार पतंजलि ने भी इस तथ्य को स्पष्ट किया है कि अर्थज्ञान के लिए ही शब्दप्रयोग होता है। ‘अर्थगत्यर्थः शब्दप्रयोगः। अर्थ सम्प्रत्यायमिष्यामिति शब्दः प्रयुज्यते’ इस दृष्टि से वेदों के अर्थ के निर्धारण के लिए निरुक्त, व्याकरण, मीमांसा आदि की परम उपयोगिता है किन्तु वैदिक ऋषि इस तथ्य से पूर्ण परिचित थे कि वाक् का स्वरूप बहुत व्यापक होते हुए भी बहुत गहन है, सब लोग उसके सम्पूर्ण स्वरूप को नहीं समझ सकते। वाक् की जिस पर कृपा हो जाती है वही मनीषी उसके सम्पूर्ण स्वरूप का साक्षात्कार कर पाता है-

उत त्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुत त्वः शृण्वन्न शृणोत्येनाम्।
उतो त्वस्मै तन्वं विसस्त्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः॥¹⁵

वैदिक ऋषि दशम् मण्डल के 71वें सूक्त के प्रारम्भिक मन्त्रों से वाक् के उच्चारण तथा वाक् के प्रयोग से पदार्थों के नामकरण की सूचना देते हैं-

बृहस्पते प्रथम वाचो अग्रं यत्प्रैरत नामधेयं दधानाः।
यदेषां श्रेष्ठं यदरिप्रभासीत् प्रेणा तदेषां निहितं गुहाविः॥¹⁶

हे बृहस्पते! हे अन्तरात्मन! पदार्थों के नामकरण के समय बालक जो वाक् को प्रेरित करते हैं वह वाक् का अग्रभाग है। इन बालकों का जो प्रशस्यतम तथा पापरहित वेदार्थ का ज्ञान है उसके गुप्त अंश का प्रेम भाव में स्थित वाणी पूर्णतः प्रकाशन कर देती है। इसका अभिप्राय यह है कि वेदाभ्यास के समय में सरस्वती वेदार्थ को इन वेदाभ्यासियों के सम्मुख प्रकाशित कर देती है।

ऋग्वेद के एक अन्य मन्त्र में भी यह प्रतिपादित किया गया है कि अहन्या जो वाक् है वह उरस् कण्ठ एवं शिरस् इन तीन स्थानों से सम्बद्ध गायत्री इत्यादि सात छन्दों के नामों को धारण करती हैं मेधावी वरुण, इनका तथा ब्रह्मलोक से सम्बद्ध रहस्यों का मेधावी अन्तेवासियों के लिए उपदेश करता है-

उवाच मे वरुणो मेधिराय त्रिःसप्त नामान्यघ्न्या विभर्ति।
विद्वान्पदस्य गुह्या न वोचद्युगाय विप्र उपराय शिक्षन्।¹⁷

कुछ भाषाविद् इस मन्त्र को पदों के भी 21 वर्णों में विभाजन का सूचक मानते हैं। पूर्व मन्त्रों में वाक् के पदों में विभाजित होने की सूचना दी ही जा चुकी है।

ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषदों में भाषाविज्ञान

वेदों के समान ही ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषदों में भी वाक् को सर्वव्यापक बताया गया है। इस दृष्टि से तैत्तिरीय ब्राह्मण का अधोलिखित मन्त्र महत्त्वपूर्ण है-

वाचं देवा उपजीवन्ति विश्वे, वाचं गन्धर्वा पशवो मनुष्याः।
वाचीभा वश्वा भुवनान्यर्पिता, स नो हवे जुषतामिन्द्रपत्नी।¹⁸

सम्पूर्ण देवों, गन्धर्वों मनुष्यों यहाँ तक कि पशुओं का सम्पूर्ण व्यवहार वाक् पर ही आश्रित होता है, इतना ही नहीं सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड वाणी पर आश्रित है, वाङ्मय है। शतपथ ब्राह्मण का वाक्य 'वाग्वै विराट्' (3.5.1.34) भी वाक् की व्यापकता का निर्देश करता है इसी प्रकार 'वागेव सरस्वती'¹⁹, 'वाग्वै सरस्वती'²⁰ आदि ब्राह्मणों से भी वाक् की व्यापकता सिद्ध है। वाक् की सर्वव्यापकता का यह विवेचन भरतमुनि तथा महाभाष्यकार पतंजलि के भी भाषा की सर्वव्यापकता के विवेचन का आधार है। भरत नाट्यशास्त्र में वाक् को ही सबका कारण मानते हैं-

वाङ्मयानीह शास्त्राणि वाङ्निष्ठानि तथैव च।
तस्माद् वाचः परं नास्ति वाग्धि सर्वस्य कारणम्।²¹

महाभाष्यकार भी 'महो देवो मर्त्या आविवेश' की व्याख्या में तथा 'एक शब्दः सम्यग्ज्ञातः सुष्ठु प्रयुक्तः स्वर्गे लोके च कामधुग् भवति' इन वचनों से वाक् को सभी प्राणियों के अन्तर में प्रविष्ट चैतन्य मानते हैं तथा वाक् से ही समस्त कामों की सिद्धि स्वीकार करते हैं। ऐतरेय ब्राह्मण में भी वाक् के त्रिधा विभाजन का उल्लेख प्राप्त होता है- 'इदं विष्णुर्विचक्रमे, त्रेधा निदधे पदम्। समूकमस्य पांसुरे'²² इस मन्त्र का अभिप्रायः यह है कि विष्णु अर्थात् सर्वव्यापक शब्दब्रह्म रूपी परा वाणी ने पृथिवी, अन्तरिक्ष तथा द्युलोक इन तीनों लोकों को तीन पगों से आक्रान्त कर लिया। इस मन्त्र की व्याख्या में ऐतरेय ब्राह्मण में कहा गया है कि इस विष्णु ने इन लोकों को अर्थात् कर्मभूमि क्रियाप्रधान प्रतिभा = पश्यन्ती को, वेदों को अर्थात् ज्ञानप्रधान मध्यमा वाक् को, वाणी को अर्थात् इच्छाप्रधान वैखरी को तीन पगों से आक्रान्त कर लिया। इनमें से एक एक की अपरिमित शाखाएँ हैं, अतएव इन्हें सहस्र कहते हैं-

'स इयँल्लोकान् विचक्रमेऽयो वेदान्, अथो वाचम् तदाहुः किं तत् सहस्रमिति, इमे लोका इमे वेदा अथो वागिति ब्रूयात्'²³

परा ही तीन रूपों में अभिव्यक्त होती है। इसी से पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी ये तीनों वाणीयाँ आक्रान्त हैं।

आश्वलायन श्रौतसूत्र जिसका समय भी 1000 ई.पू. के आसपास, इसमें भी ध्वनियों के विशेष अध्ययन की सूचना मिलती है। न्यूड्ख एक विशेष प्रकार का उच्चारण है पाणिनी ने उच्चारणविधि के रूप में जप, न्यूड्ख एवं साम का उल्लेख किया है-

'यज्ञकर्मण्यजपन्यूड्खसामसु'²⁴

भट्टोजीदीक्षित ने इस सूत्र की व्याख्या में न्यूड्ख को परिभाषित करते हुए लिखा है कि सोलह प्रकार के ओंकारों का उच्चारण न्यूड्ख कहलाता है-

'न्यूड्खा नाम षोडश ओंकाराः'

न्यूड्ख में एक ही न्यूड्ख में एक ही स्वर को विभिन्न मात्राओं एवं स्वराधातों से सोलह बार उच्चरित किया जाता था। इस प्रकार 1000 ई. पूर्व में न्यूड्ख के रूप में ध्वनियों के इतने सूक्ष्म विश्लेषण से यह सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि उस समय भाषा के अध्ययन में लोगों की अत्यधिक अभिरूचि थी। पतंजलि के अनुसार एकार एवं ओकार के हस्वरूप का प्रयोग मात्र सामवेद की सात्यमुग्नि तथा राणायनीय शाखाओं तक ही सीमित था।

उपसंहार

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भाषा जितनी प्रकट रूप में प्रत्यक्ष का विषय है उससे इसका कहीं अधिक अंश गूढ़ रहता है। भाषा का यह गूढ़ अंश सामान्य जनों की समझ से परे होता है। केवल मनीषी लोग ही इसके पूर्ण स्वरूप को समझ पाते हैं। वस्तुतः इन मन्त्रों के माध्यम से वाणी के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए इसके प्रकृति प्रत्यय आदि विभाजनों, छान्दोबद्धता तथा अर्थज्ञान आदि विभिन्न पक्षों का भाषावैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। इस दृष्टि से भाषानिरूपण के ये प्रारम्भिक विचार अत्यन्त उपयोगी हैं। यही विवेचन शिक्षा, व्याकरण, निरुक्त तथा छान्दस इन चारों वेदाङ्गों का उत्स है।

भारतीय ज्ञान परम्परा में वाणी के विवेचन को पुण्यकार्य माना गया क्योंकि समस्त व्यवहारों का मूल वाणी ही है। इस विवेचन के मुख्यतः चार पक्ष हैं-

(1) शुद्ध-उच्चारण, (2) पदच्छेद, प्रकृति - प्रत्यय विभाजन, (3) अर्थज्ञान (4) तदनुकूल आचरण

शुद्ध उच्चारण के लिए गुरु के द्वारा शुद्ध रूप में उच्चरित मन्त्रों का तदनुकूल उच्चारण करना आवश्यक था। अन्यथा स्वर वर्ण आदि के दोष से अनर्थ आपतित होता। अर्थज्ञान का मुख्यतम साधन होने के कारण तथा पाठभेद को रोकने के लिए संहिता रूप में दृष्ट मन्त्रों का पदों में तथा पदों का प्रकृति-प्रत्ययों में विभाजन करते हुए पदपाठ को प्रस्तुत किया गया, जिससे अर्थबोध में सौकर्य हुआ।

वेदार्थावबोध की दृष्टि से ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषद् ग्रन्थों का भी अतिशय महत्त्व है। संहिताओं के समान इनमें भी अनेक स्थलों पर प्रसङ्गतः वाणी के विभिन्न पक्षों पर विचार किया गया है।

संदर्भ

1. नाट्यशास्त्र 14.3
2. ऋग्वेद 10.125.1
3. ऋग्वेद 10.125.3
4. ऋग्वेद 10.125.6
5. ऋग्वेद 1.164.24
6. ऋग्वेद 1.164.42
7. वाक्यपदीयम् 1.1
8. ऋग्वेद 1.164.45
9. वाक्यपदीयम् 1.142
10. ऋग्वेद 4.58.3
11. महाभाष्यम् (पस्पशाह्निकम्)
12. ऋग्वेद 7.43.1
13. ऋग्वेद 8.200.22
14. निरुक्त अध्याय 2
15. ऋग्वेद 10.71.4
16. ऋग्वेद 10.71.1
17. ऋग्वेद 7.87.4
18. ऋग्वेद 2.8.3
19. ऐतरेय ब्राह्मण 8.6
20. वाग्वै सरस्वती (त्रै.ब्रा. 1.3.4)
21. नाट्यशास्त्र 24
22. ऋग्वेद 1.22.17
23. ऐतरेय ब्राह्मण 28.7
24. पाणिनीय सूत्र 1.2.34